Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 9, Issue 2 | November 2021 - April 2022 | pp. 171-175

सामाजिक न्याय : वंचित वर्ग के संदर्भ में

डॉ. प्रभा जैन

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान

श्री भवानी निकेतन महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

सर्वप्रथम न्याय का संक्षिप्त ऐतिहासिक तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य वर्णित है। तत्पश्चात जॉन रॉल्स के न्याय सिद्धांत का अनुगमन करते हुए यह लेख प्रस्तुत किया गया है। इसमें जॉन रॉल्स के शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय को आधार बनाया गया है। यह आवश्यक है कि न्याय केवल प्रक्रिया में ना उलझे और उसे क्रियान्वयन का एक स्तर प्राप्त हो तभी उसकी सार्थकता है। जॉन रॉल्स के कथनानुसार जब तक समाज रूपी जंजीर की सबसे कमजोर कड़ी मजबूत नहीं होगी किसी भी देश का विकास नहीं हो सकता। इस बात को ध्यान रखते हुए वर्तमान सरकार ने वंचित वर्ग के लिए प्रक्रियात्मक स्तर से आगे बढ़कर क्रियान्वयन की दिशा में काम करना शुरू कर दिया है। ताकि वंचित वर्ग जिसमें महिलाएँ भी शामिल है उन्हें वास्तविक अर्थों में सच्चा न्याय प्राप्त हो सके। वर्तमान सरकार के प्रयास इस उद्देश्य प्राप्ति हेतु एक अच्छा दिशा संकेत है।

संकेताक्षर— *बहुसंस्कृतिवाद, शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय, समरसता, उदारतावादी–समतावाद*

प्रस्तावना

न्याय की समस्या का इतिहास काफी पुराना है। मानव चिन्तनशील प्राणी होने के नाते राजनीतिक समाज के प्रादुर्भाव से ही अपने लिए न्याय की मांग करता आया है। न्याय की समस्या मुख्यतया यह निर्णय करने की समस्या है कि समाज के विभिन्न वर्गों व्यक्तियों और समूहों के बीच विभिन्न वस्तुओं, सेवाओं, अवसरों, लाभों आदि को आवंटित करने का नैतिक व न्यायसंगत आधार क्या हो। इसी कारण अनेक विचारकों ने स्वतन्त्रता तथा समानता के विरोधी दावों को हल करने के लिए अपने न्याय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उन्हीं विचारकों में से एक जॉन रॉल्स हैं। जॉन रॉल्स ने अपने न्याय सिद्धान्त की शुरूआत में ही न्याय के बारे में यह तर्क दिया है कि अच्छे समाज में अनेक सद्गुण अपेक्षित होते हैं और उनमें न्याय का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। न्याय उत्तम समाज की आवश्यक शर्त हैं, परन्तु यह उसके लिए पर्याप्त नहीं है, क्योंकि किसी समाज में न्याय के अतिरिक्त भी दूसरे नैतिक गुणों की प्रधानता हो सकती है। परन्तु जो समाज अन्यायपूर्ण है उसकी कभी प्रशंसा नहीं की जानी चाहिए। जो विचारक यह मांग करते हैं कि सामाजिक उन्नति के लिए न्याय के विचार को हटा देना चाहिए, उनका ध्येय समाज को नैतिक पतन की तरफ ले जाने वाला होता है। न्याय के बिना समाज की उन्नति और उत्तम समाज की स्थापना दोनों ही असम्भव है।

भारत जैसे देश में सामाजिक न्याय का नारा वंचित समूहों से राजनीतिक लाभ प्राप्त करने का जरिया रहा है । उदारतावादी मानकीय राजनीतिक सिद्धांत में उदारतावादी–समतावाद से आगे बढ़ते हुए सामाजिक न्याय के सिद्धांतीकरण में कई आयाम जुड़ते गये हैं। मसलन, अल्पसंख्यक अधिकार, बहुसंस्कृतिवाद, मूल निवासियों के अधिकार आदि। इसी तरह, नारीवाद के दायरे में स्त्रियों के अधिकारों को ले कर भी विभिन्न स्तरों पर सिद्धांतीकरण हुआ है और स्त्री–सशक्तीकरण के मुद्दों को उनके सामाजिक न्याय से जोड़ कर देखा जाने लगा है। यद्यपि एक विचार के रूप में विभिन्न धर्मों की बुनियादी शिक्षाओं में सामाजिक न्याय के विचार को

देखा जा सकता है, लेकिन अधिकांश धर्म या सम्प्रदाय जिस व्यावहारिक रूप में सामने आये या बाद में जिस तरह उनका विकास हुआ, उनमें कई तरह के ऊँच-नीच और भेदभाव जुड़ते गये। समाज-विज्ञान में सामाजिक न्याय का विचार उत्तर-ज्ञानोदय काल में सामने आया और समय के साथ अधिकाधिक परिष्कृत होता गया। क्लासिकल उदारतावाद ने मनुष्यों पर से हर तरह की पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं की जकड़न को खत्म किया और उसे अपने मर्जी के हिसाब से जीवन जीने के लिए आजाद किया। इसके तहत हर मनुष्य को स्वतंत्रता देने और उसके साथ समानता का व्यवहार करने पर जोर जरूर था, लेकिन ये सारी बातें औपचारिक स्वतंत्रता या समानता तक ही सिमटी हुई थीं। बाद में उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में कई उदारतावादियों ने राज्य के हस्तक्षेप द्वारा व्यक्तियों की आर्थिक भलाई करने और उन्हें अपनी स्वतंत्रता को उपभोग करने में समर्थ बनाने की वकालत की। कई यूटोपियाई समाजवादियों ने भी एक ऐसे समाज की कल्पना की जहाँ आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक आधार पर लोगों के साथ भेदभाव न होता हो। स्पष्टत: इन सभी विचारों में सामाजिक न्याय के प्रति गहरा सरोकार था। इसके बावजूद मार्क्स ने इन सभी विचारों की आलोचना की और जोर दिया कि न्याय जैसी अवधारणा की आवश्यकता पूँजीवाद के भीतर ही होती है क्योंकि इस तरह की व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर कब्जा जमाये कुछ लोग बहुसंख्यक सर्वहारा का शोषण करते हैं। उन्होंने क्रांति के माध्यम से एक ऐसी व्यवस्था कायम करने का लक्ष्य रखा जहाँ हर कोई अपनी क्षमता के अनुसार काम करने और अपनी आवश्यकता के अनुसार चीजें हासिल करने की परिस्थितियाँ प्राप्त हों। लेकिन बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में मार्क्सवाद और उदारतावाद का जो व्यावहारिक रूप सामने आया, वह उनके आश्वासनों जैसा न हो कर विकृत था। मार्क्सवाद से प्रेरित रूसी क्रांति के कुछ वर्षों बाद ही स्तालिनवाद की सर्वसत्तावादी संरचनाएँ उभरने लगीं। वहीं उदारतावाद और पूँजीवाद ने आंतरिक जटिलताओं के कारण दुनिया को दो विश्व-युद्धों, महामन्दी, फासीवाद और नाजीवाद जैसी भीषणताओं में धकेल दिया। पूँजीवाद को संकट से उबारने के लिए पूँजीवादी देशों में क्लासिकल उदारतावादी सूत्र से लेकर कींसवादी नीतियों तक हर सम्भव उपाय अपनाने की कोशिश की गयी। इस पूरे संदर्भ में सामाजिक न्याय की बातें नेपथ्य में चली गयीं या सिर्फ इनका दिखावे के तौर पर प्रयोग किया गया। इसी दौर में उपनिवेशवाद के ख़िलाफ चलने वाले संघर्षों में मानव-मुक्ति और समाज के कमजोर तबकों के हकों आदि की बातें जोरदार तरीके से उठायी गयीं। खास तौर पर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सभी तबकों के लिए सामाजिक न्याय के मुद्दे पर गम्भीर बहस चली। इस बहस से ही समाज के वंचित तबकों के लिए संसद एवं नौकरियों में आरक्षण, अल्पसंख्यकों को अपनी आस्था के अनुसार अधिकार देने और अपनी भाषा का संरक्षण करने जैसे प्रावधानों पर सहमति बनी। बाद में ये सहमतियाँ भारतीय संविधान का भाग बनीं।

इसी के साथ-साथ मानकीय उदारतावादी सिद्धांत में राज्य द्वारा समाज के कुछ तबकों की भलाई या कल्याण के लिए ज़्यादा आय वाले लोगों पर टैक्स लगाने का मसला विवादास्पद बना रहा। कींस ने पूँजीवाद को मन्दी से उबारने के लिए राज्य के हस्तक्षेप के जरिये रोजगार पैदा करने के प्रावधानों का सुझाव दिया, लेकिन फ्रीरेड्रिख वान हायक, मिल्टन फ्रीडमैन और बाद में रॉबर्ट नॉजिक जैसे विद्वानों ने आर्थिक गतिविधियों में राज्य के हस्तक्षेप की आलोचना की। इन लोगों का मानना था कि इससे व्यक्ति की स्वतंत्रता और आर्थिक आजादी को चोट पहुँचती है। जॉन रॉल्स ने 1971 में अपनी किताब 'अ थियरी ऑफ जस्टिस' में ताकतवर दलीलें दीं आखिर क्यों समाज के कमजोर तबकों की भलाई के लिए राज्य को सक्रिय हस्तक्षेप करना चाहिए।

अपनी थियरी में रॉल्स शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए वितरणमूलक न्याय के लक्ष्य को हासिल करने की कोशिश करते हुए दिखाई देते हैं। अपने न्याय के सिद्धांत में उन्होंने हर किसी को समान स्वतंत्रता के अधिकार की तरफदारी की। इसके साथ ही भेदमूलक सिद्धांत के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि सामाजिक और आर्थिक अन्तरों को इस तरह समायोजित किया जाना चाहिए कि इससे सबसे वंचित तबके को सबसे ज़्यादा फायदा हो। यहाँ उल्लेखनीय है कि साठ के दशक से ही पश्चिम में नारीवादी आंदोलन, नागरिक अधिकार आंदोलन, गे, लेस्बियन और ट्रांस-जेंडर आंदोलन और पर्यावरण आंदोलन आदि उभरने लगे थे। बाद के दशकों में इनका प्रसार ज़्यादा बढ़ा और इन्होंने सैद्धांतिक विमर्श को भी गहराई प्रदान की। मसलन, नारीवादियों ने उदारतावाद और रॉल्सवादी रूपरेखा की

आलोचना की। अपने विश्लेषण द्वारा उन्होंने पितृसत्ता को नारीवादियों के समान हक के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट के रूप में रेखांकित किया। इसी तरह, गे, लेस्बियन और ट्रांस—जेंडर लोगों ने समाज में 'सामान्य' या 'नार्मल' की वर्चस्वी रूपरेखा पर सवाल उठाया और अपने लिए समान स्थिति की माँग की। नागरिक अधिकार आंदोलनों द्वारा पश्चिम में, खास तौर पर अमेरिकी समाज में काले लोगों ने अपने लिए बराबरी की माँग की। मूल निवासियों ने भी अपने सांस्कृतिक अधिकारों की माँग करते हुए बहुत सारे आंदोलन किये हैं। बहुसंस्कृतिवादियों ने अपनी सैद्धांतिक रूपरेखा में इन सभी पहलुओं को समेटने की कोशिश की है। इन सभी पहलुओं ने सामाजिक न्याय के अर्थ में कई नये आयाम जोड़े हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विविध समूहों के लिए सामाजिक न्याय का अलग-अलग अर्थ रहा है।

असल में विकासशील समाजों में पश्चिमी समाजों की तुलना में सामाजिक न्याय ज़्यादा रैडिकल रूप में सामने आया है। मसलन, दक्षिण अफ्रीका में अश्वेत लोगों ने रंगभेद के खिलाफ और सत्ता में अपनी हिस्सेदारी के लिए जोरदार संघर्ष किया। इस संघर्ष की प्रकृति अमेरिका में काले लोगों द्वारा चलाये गये संघर्ष से इस अर्थ में अलग थी कि दक्षिण अफ्रीका में काले लोगों को ज़्यादा दमनकारी स्थिति का सामना करना पड़ रहा था। इस संदर्भ में भारत का उदाहरण भी उल्लेखनीय है। बहुसंस्कृतिवाद ने जिन सामुदायिक अधिकारों पर जोर दिया उनमें से कई अधिकार भारतीय संविधान में पहले से ही दर्ज हैं। लेकिन यहाँ सामाजिक न्याय वास्तविक राजनीति में संघर्ष का नारा बन कर उभरा। मसलन, भीमराव अम्बेडकर और उत्पीड़ित जातियों और समुदायों के कई नेता समाज के हाशिये पर पड़ी जातियों को शिक्षित और संगठित होकर संघर्ष करते हुए अपने न्यायपूर्ण हक को हासिल करने की विरासत रच चुके थे। इसी तरह पचास और साठ के दशक में राममनोहर लोहिया ने इस बात पर जोर दिया कि पिछड़ों, दलितों, अल्पसंख्यकों और स्त्रियों को एकजुट होकर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करना चाहिए। लोहिया चाहते थे कि ये समूह एकजुट होकर सत्ता और नौकरियों में ऊँची जातियों के वर्चस्व को चुनौती दें। इस पृष्ठभूमि के साथ नब्बे के दशक के बाद सामाजिक न्याय भारतीय राजनीति का एक प्रमुख नारा बनता चला गया। इसके कारण अभी तक सत्ता से दूर रहे समूहों को सत्ता की राजनीति के केंद्र में आने का मौका मिला। ग़ौरतलब है कि भारत में भी पर्यावरण के आंदोलन चल रहे हैं। लेकिन ये लड़ाइयाँ स्थानीय समुदायों के अपने 'जल, जंगल और जमीन' के संघर्ष से जुड़ी हुई हैं। इसी तरह विकासशील समाजों में अल्पसंख्यक समूह भी अपने खिलाफ पूर्वग्रहों से लड़ते हुए अपने लिए ज़्यादा बेहतर सुविधाओं की माँग कर रहे हैं। इस अर्थ में सामाजिक न्याय का संघर्ष लोगों के अस्तित्व और अस्मिता से जुड़ा हुआ संघर्ष है।

जॉन रॉल्स ने प्रक्रियात्मक न्याय को सामाजिक न्याय का उपकरण बनाने का प्रयास किया हैं इसी कारण जॉन रॉल्स ने कहा है—''समाज रूपी कड़ी को मजबूत बनाने के लिए इसकी सबसे कमजोर कड़ी को सुदृढ़ बनाना आवश्यक है। ''कमजोर कड़ी से जॉन रॉल्स का आशय वंचित वर्ग से है। भारत के सन्दर्भ में जॉन रॉल्स की सामाजिक न्याय की अवधारणा काफी महत्त्व रखती है। 1990 के बाद भारत में पिछड़े वर्गों को दिया गया आरक्षण सामाजिक न्याय की प्रक्रिया का ही एक प्रमुख भाग है। पिछले दशक से सामाजिक न्याय का विचार भारतीय राजनीतिक समाज का प्रमुख अंग बन चुका है। जॉन रॉल्स की सामाजिक न्याय की अवधारणा भारतीय समाजवादी दर्शन और सर्वोदय के विचार के काफी निकट है। अत: जॉन रॉल्स का न्याय का सिद्धान्त सामाजिक न्याय की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है।

मूल्यों और संसाधनों का आधिकारिक तौर पर निर्धारण ही राजनीति है। लंबे समय तक सही तरीके से ऐसा करते रहने से समाज में न्याय स्थापित होता है और राजनीति सामाजिक बदलाव का बड़ा माध्यम बनती है। अगर राजनीति और न्याय की दोनों परिभाषा को देखें तो सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने में कठिनाई नहीं होगी। मूल्यों और संसाधनों का न्याय संगत तरीके से आधिकारिक रूप से निर्धारण ही राजनीति का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। जिससे सामाजिक न्याय सुनिश्चित होगा और राजनीति एक बड़े बदलाव की साक्षी बनेगी। न्याय सुनिश्चित करने में वितरण के साथ-साथ कार्यान्वयन के स्तर पर भी ध्यान देना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो न्याय की स्थापना के लिए बेहतर वितरण के साथ उत्तम प्रक्रिया का भी महत्त्व है।

सरकार द्वारा वितरणात्मक व प्रक्रियात्मक न्याय का समन्वय

वितरणी न्याय के तहत जनता के लिए संसाधन योजना और कार्यक्रमों का सरकार द्वारा निर्धारण किया जाता है। अधिकतर सरकारें अपने काम को यहीं तक सीमित मानती है। वह इस बात पर चिन्ता नहीं करती कि योजना या संसाधन नीचे तक या जरूरतमन्द तक कैसे पहुँचेंगे। इसलिए योजनाओं को धरातल पर लाने में कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कई स्तर पर संसाधनों का रिसाव देखने को मिलता है। इस रिसाव का सबसे अधिक नुकसान पंक्ति के अन्तिम में खड़े व्यक्ति को होता है। क्योंकि वहाँ पहुँचते-पहुँचते संसाधन खत्म होने लगते हैं। जो गरीब और वंचित है वह हमेशा गरीब रह जाता है इसलिए जरूरी है कि वितरणी न्याय के साथ-साथ प्रक्रियात्मक न्याय को भी सुनिश्चित किया जाए। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर सरकार ने विशेष कदम उठाए हैं। न्याय की प्रक्रियात्मक स्वरूप को विशुद्ध रूप में उपलब्ध कराने हेतु सरकार अनेक प्रयत्न कर रही है। प्रधानमन्त्री जन धन योजना जिसके 8 वर्ष पूरे होने जा रहे हैं। वित्तीय समावेशन के मामले में दुनिया की सबसे बड़ी योजना साबित हुई है। इस योजना की औपचारिक शुरुआत 28 अगस्त 2014 को हुई थी।

लैंगिक विभेद को दूर करने के लिए मार्च 2020 में सरकार ने महिलाओं के लिए जनधन खाता योजना प्रारंभ की। इस प्रकार वंचित वर्ग जिसमें महिलाएँ शामिल है उन्हें जन धन योजना के द्वारा विकास की मुख्य धारा में शामिल किया गया। इस योजना का मुख्य मकसद था कि जो महिलाएँ आर्थिक विपन्नता के चलते बैंकों में अपना खाता नहीं खोल पाती थी, उन्हें बैंकों से जोड़ना। साथ ही सरकार की योजनाओं के तहत दिए जाने वाले अनुदान की राशि सीधे बैंक खाते में पहुँचाना। भारत का लैंगिक सन्तुलन विश्व में न्यूनतम सन्तुलनों में से एक है और इसमें सुधार करना न केवल लैंगिक समानता के लिये बल्कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिये महत्वपूर्ण है।

केन्द्र सरकार का उद्देश्य सिर्फ योजनाएँ बनाकर रह जाना नहीं था अपितु उनके क्रियान्वयन व क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं के लिए समस्या सुधार की व्यवस्था बनाना भी था। कार्यक्रम व योजनाओं के क्रियान्वयन में गति का विशेष ध्यान रखा गया। केन्द्र सरकार के प्रमुख कार्यक्रम जैसे उज्ज्वला योजना, प्रधानमन्त्री आवास योजना, दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना, उजाला योजना, प्रधानमन्त्री फसल बीमा योजना व मृदा स्वास्थ्य कार्ड जैसी कई अन्य योजनाओं के निर्धारित लक्ष्यों को निर्धारित समय सीमा में पूर्ण किया गया। नये लक्ष्यों को और अधिक बढ़ाया गया व उनकी प्राप्ति करने हेतु अनवरत प्रयास किये जा रहे हैं। इन प्रमुख योजनाओं का लाभ भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले निवासियों को मिला, यह वर्ग स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी मूलभूत सुविधाओं से वंचित था, आज ग्रामीण क्षेत्रवासी भारत के विकास में अपना योगदान देने हेतु तत्पर हैं व उनमें यह भाव जगा है कि भारत की प्रगति में उनका भी योगदान है। अभी तक भारत का विकास व आर्थिक प्रगति शहरीकरण व औद्योगीकरण में ही प्रदर्शित होती थी जो कि आज ''सबका साथ सबका विकास'' की अवधारणा को पुष्ट करते हुए भारत के प्रत्येक राज्य व प्रत्येक क्षेत्र के निवासियों की उन्नति व समृद्धि में परिलक्षित होती है।

सामाजिक न्याय और समरसता का सिद्धांत

अभी तक हमने प्रक्रियात्मक न्याय की बात करके समाज के वंचित वर्ग के लिए सभी सुविधाएँ निश्चित की अब सामाजिक समरसता के सिद्धांत को आधार मानकर मौजूदा सरकार के प्रयासों की चर्चा करेंगे। आजादी के बाद से ही अनुसूचित जाति-जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग को संवैधानिक सुरक्षा देने की दिशा में उपाय किए। वहीं दूसरी ओर आवास, शिक्षा, चिकित्सा और रोजगार के क्षेत्र में अनेक प्रावधान बनाकर वंचित वर्ग जिसमें दलित, महिलाओं और शोषित समाज को सशक्त बनाने का काम किया। दलितों के लिए स्टैंड अप इंडिया योजना के तहत उद्यमिता का वातावरण बनाया, ताकि वे खुद काम शुरू कर सकें, साथ ही अपने समाज के दूसरे लोगों को भी काम पर लगा सके। वर्तमान सरकार ने समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को आरक्षण देने का ऐतिहासिक फैसला किया, जिससे वह सामान्य वर्ग के पिछड़े लोगों के तारणहार बनकर सामने आए। ईज ऑफ लिविंग के तहत समाज में पिछड़े लोगों को बुनियादी सुविधाएँ शीघ्र और सस्ती दर पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई। दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना के तहत देश के सभी दलित गाँवों में बिजली पहुँची उजाला योजना में गरीबों को एलईडी बल्ब का वितरण किया गया।

अब दलितों और गरीबों को भी लगने लगा है कि वास्तव में उनके लिए काम किया जा रहा है। आयुष्मान भारत योजना, राष्ट्रीय अर्बन मिशन, बिना बैंक गारंटी के लोन लेने का विकल्प दिया गया इससे दलित युवा स्वरोजगार करने में सक्षम हुए। केंद्रीय उच्च शिक्षण संस्थानों की सीधी भर्ती में रोस्टर प्रणाली को लागू किया। एससी और ओबीसी वर्ग के छात्रों की फ्री कोचिंग की व्यवस्था की व्यवस्था की। 103वें संवैधानिक संशोधन में भारत सरकार ने सामान्य वर्ग के गरीबों को 10% आरक्षण दिया। जिसे 12 जनवरी 2019 को राष्ट्रपति ने स्वीकृत किया। सरकार द्वारा समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को आरक्षण देने का यह निर्णय, समतापूर्ण समाज के निर्माण हेतु अच्छा प्रयास है।

किसी भी समाज के विकास का सीधा सम्बन्ध उस समाज की महिलाओं के विकास से जुड़ा होता है। महिलाएँ अर्थात भारत की आधी आबादी को विकास की मुख्य धारा से जोड़े बिना न्याय की कल्पना भी नहीं की जा सकती, महिलाओं के विकास के बिना व्यक्ति, परिवार और समाज का विकास हो ही नहीं सकता योजनाओं के निर्धारण अर्थात प्रक्रियात्मक स्तर से बढ़कर कार्यान्वयन स्तर पर भी भारत सरकार द्वारा महिलाओं के विकास के लिए किए गए प्रयास सुशासन की दिशा में महत्त्वपूर्ण क़दम है इसके अन्तर्गत सरकार ने कुछ योजनाएँ जैसे बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ—लिंग के आधार पर लड़का और लड़की में होने वाले भेदभाव को रोकने के साथ साथ प्रत्येक बालिका की सुरक्षा, शिक्षा और समाज में स्वीकृति सुनिश्चित करना, उज्ज्वला योजना—यह योजना एक धुआँरहित ग्रामीण भारत की परिकल्पना करती है, सुकन्या समृद्धि योजना और कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना, महिलाओं को नाइट शिफ्ट में काम करने की अनुमति, बालिका शिक्षा के प्रति समर्पित उड़ान (UDAAN) योजना, पुलिस भर्ती में महिलाओं की 33% आरक्षण देने का निर्णय, पुलिस बल में महिलाओं की भागीदारी 53% की वृद्धि, कार्यस्थल पर महिलाओं के लिए सुरक्षा कानून, मातृत्व अवकाश बढ़ाया गया, एसिड अटैक पीड़ितों को दिव्याँगों जैसी मदद दी गई , महिलाओं को पासपोर्ट में अपना उपनाम रखने की छूट आदि प्रावधान किए गए।

निष्कर्ष

इस प्रकार की अनेकों योजनाएँ सदियों से अधिकारों से वंचित महिलाओं के विकास हेतु सार्थक प्रयास है। मौजूदा सरकार के प्रयासों से स्पष्ट है कि समाज के सबसे वंचित वर्ग के लिए सरकार प्रतिबद्धता से काम कर रही है , जो एक बड़े सामाजिक परिवर्तन का संकेत है और न्याय की अवधारणा को पूर्णरूपेण सार्थक करता है। महिलाओं को भी समाज की मुख्य धारा से वंचित करके न्याय प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस हेतु सरकार द्वारा अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। यह समस्त प्रयास सुशासन, सामाजिक न्याय अन्तोदय और समरसता के लिए प्रतिबद्ध है। सरकार के तमाम प्रयासों की सार्थकता तभी है जब समाज में जागरुकता आए और सवर्ण जाति के लोग सभी जातियों के साथ समान व्यवहार करें । शहरी स्तर पर वंचित वर्ग के लोग अवश्य लाभान्वित हो रहे हैं किन्तु अभी भी ग्रामीण इलाके के लोग सरकार द्वारा बनाई गई योजनाओं का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। ग्रामीण इलाकों में सरकार की योजनाओं की जानकारी देने के लिए योजनागत व्यापक जन अभियान प्रारंभ करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार यदि सरकार महिलाओं के विकास की अनेक योजनाएँ बना रही है, तो महिलाओं को भी सामाजिक स्तर पर जागरूक करना होगा। अभी भी समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग बालिकाओं की शिक्षा का विरोधी है उन्हें जनजागृति माध्यम से भी सरकारी योजनाओं से अवगत कराना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दाधीच, नरेश, जॉन रॉल्स का न्याय सिद्धांत , अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2003, पृ.सं. 19–20
2. सेन, अमर्त्य, द आइडिया ऑफ जस्टिस बेल्कनेप प्रेस, कैंब्रिज, 2009, पृ.सं. 29–31
3. मेहता, प्रताप भानु, द पॉलिटिक्स ऑफ सोशल जस्टिस इन इंडिया, 2006, पृ.सं. 39
4. खंडेला, मानचन्द, मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय अविष्कार पब्लिशर्स, 2008, पृ.सं. 58
5. पूरनमल, मानवाधिकार सामाजिक न्याय और भारत का संविधान, पोइंटर पब्लिशर्स, 2003, पृ.सं. 75
6. एचटीटीपी://सोश्यलजस्टिस.एनआईसी.इन/पीडीएफ/
7. एचटीटीपी://डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.मद्रा.ओआरजी.इन
8. एचटीटीपी://ओपन.लिब.यूएमएन.इडीयू